

[2012] 5 एस. सी. आर 1154

अमर पाल सिंह

वी.

उत्तर प्रदेश और उत्तर प्रदेश का राज्य।

(2009 की आपराधिक अपील संख्या 651)

17 मई, 2012

[डॉ. बी. एस. चौहान और दीपक मिश्रा, जे. जे.]

न्यायपालिका-उच्च न्यायालय के फैसले में अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी के खिलाफ प्रतिकूल टिप्पणी और निर्देश-का निष्कासन-अपीलार्थी, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर, यू/एस के समक्ष दायर आवेदन। पुलिस को प्राथमिकी दर्ज करने और कथित आपराधिक अपराधों की जांच करने का निर्देश जारी करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) - अपीलार्थी ने आवेदन को खारिज कर दिया-पुनरीक्षण में , उच्च न्यायालय ने विवादित आदेश को दरकिनार कर दिया और अपीलार्थी के खिलाफ प्रतिकूल टिप्पणियां और टिप्पणियां कीं और उसके खिलाफ उचित कार्रवाई के लिए निर्देश भी पारित किए - टिप्पणियों, टिप्पणियों और अपीलार्थी के खिलाफ पारित निर्देश के निष्कासन के लिए प्रार्थना-आयोजित: एक न्यायिक अधिकारी के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी न केवल व्यक्तिगत रूप से उसे भारी नुकसान पहुंचाती है (क्योंकि बाद में टिप्पणियों का निष्कासन उसकी प्रतिष्ठा को पूरी तरह से पुनर्जीवित नहीं कर सकता है) बल्कि संस्था की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करता

हैं और इसके उत्साहपूर्वक पोषित दर्शन की पवित्रता को नष्ट कर देता है। - एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश एक अधिकारी द्वारा पारित अपरिवर्तित और भ्रामक आदेश के बारे में कितना भी दृढ़ता से महसूस कर सकता है , लेकिन उसे संयम , शांति, निष्पक्ष तर्क और तैयार संयम बनाए रखने की आवश्यकता होती है-किसी भी अनावश्यक , किसी भी अनुचित टिप्पणी को दूर रखने के लिए लोको पैरेंटिस की अवधारणा को दिमाग में सबसे पहला स्थान लेना होगा-मामले में , टिप्पणियां, टिप्पणी और अंतिम निर्देश पूरी तरह से अनुचित और अनावश्यक थे-अपीलार्थी ने महसूस किया था कि देरी और अन्य सहायक कारकों के कारण यू/एस की शक्ति का प्रयोग करने का कोई औचित्य नहीं था। 156 (3) सीआरपीसी-उच्च न्यायालय , जैसा कि स्पष्ट है , पूरे परिदृश्य के बारे में एक अलग धारणा थी - तथ्य और कानून के अनुप्रयोग की धारणाएँ गलत हो सकती हैं लेकिन इस तरह की टिप्पणियों और निर्देशों की कभी भी आवश्यकता नहीं होती है - उपरोक्त के संबंध में , टिप्पणी और अपीलार्थी के खिलाफ निर्देश को हटा दिया जाता है-यदि उक्त टिप्पणी न्यायिक अधिकारी की वार्षिक गोपनीय सूची में दर्ज की गई है तो उसे हटा दिया जाएगा।

अपीलार्थी, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट , बुलंदशहर के समक्ष सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दायर किया था, जिसमें पुलिस को प्राथमिकी दर्ज करने और जानलेवा हमले के कथित अपराधों की जांच करने का निर्देश जारी करने के लिए कहा गया था। अपीलार्थी ने कुछ कारण बताए और आवेदन को खारिज कर दिया। असंतुष्ट, शिकायतकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी , जिसने अपीलार्थी-मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश को दरकिनार करते हुए अपीलार्थी

के खिलाफ प्रतिकूल टिप्पणियां और टिप्पणियां कीं और उसके खिलाफ उचित कार्रवाई के लिए निर्देश भी पारित किया। उक्त टिप्पणियों, टिप्पणियों और उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतिम निर्देश को हटाने के लिए तत्काल अपील में प्रार्थना की गई थी। अपीलार्थी की ओर से यह प्रस्तुत किया गया था कि उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां और परिणामी निर्देश पूरी तरह से अनुचित थे और निर्विवाद रूप से अधीनस्थ न्यायपालिका के एक सदस्य के आत्मसम्मान और कैरियर को प्रभावित करते थे और इसलिए वे निष्कासन के योग्य थे।

इसलिए जो मुद्दा विचार के लिए उठा वह यह था कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां और निर्देश इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुरूप किए गए थे और न्यायिक शिष्टाचार और औचित्य के अनुरूप थे।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने कहा:

1. वर्तमान अपील एक तस्वीर को दर्शाती है और एक कैनवास को उजागर करती है कि कैसे , इस न्यायालय की कई घोषणाओं के बावजूद, अधीनस्थ न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की रक्षात्मकता से निपटने के दौरान , जब यह अपील या संशोधन में उच्च न्यायालय के समक्ष हमले के अधीन है , तो समशीतोष्ण और शांत भाषा के उपयोग की अनिवार्य आवश्यकता इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक न्यायिक अधिकारी असुरक्षित है और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसी अनुचित टिप्पणियां , न्यायपालिका के लिए सम्मान बढ़ाने के बजाय, पदानुक्रमित प्रणाली में एक असंगति पैदा करती हैं और न्यायपालिका को नीचे लाती हैं , पूरी तरह से बहिष्कृत कर दिया

गया है। इसके अलावा , यह प्रवृत्ति एक लाइलाज कैंसर कोशिका की तरह बनी हुई प्रतीत होती है जो थोड़े से असंतुलन पर विस्फोट करती है। [पैरा 1) [1160-ए-सी]

मसुमन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। और एनर. 2007 AIJ (1) 221- संदर्भित।

2.1. चार दशकों से अधिक समय से यह न्यायालय एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पवित्र कर्तव्य पर जोर दे रहा है कि निर्णय में भाषा का उपयोग कैसे किया जाए ताकि संबंधित अधिकारी को एक संदेश दिया जा सके। यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि निर्णय को अस्थिर करते समय तर्क की एक प्रक्रिया होनी चाहिए और इस तरह के तर्क को स्पष्टता और परिणाम अभिविन्यास के साथ उचित रूप से कहा जाना चाहिए। एक संदेश और एक फटकार के बीच एक अंतर स्पष्ट रूप से कहा गया है। एक न्यायाधीश को शिष्टाचार और पवित्रता बनाए रखने की आवश्यकता होती है जो न्यायिक अनुशासन और संयम में निहित है। किसी भी स्तर पर काम करने वाले न्यायाधीश की जनता की नजर में गरिमा होती है और पूरी व्यवस्था की विश्वसनीयता गरिमापूर्ण भाषा के उपयोग और निरंतर संयम , संयम और संयम पर निर्भर करती है.

न्यायिक अधिकारी पर अनुचित टिप्पणियां उक्त विश्वसनीयता में संध लगाती हैं और परिणामस्वरूप किसी प्रकार का क्षरण होता है और कानून के शासन की अवधारणा को प्रभावित करता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया की पवित्रता को एक मंच पर बैठने और शिष्टाचार की अवहेलना करने वाले उपदेश देने के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उच्च न्यायालयों की ओर से सुधारात्मक उपायों का सहारा लेना अनिवार्य है। प्रशासनिक

पक्ष में एक सुधारात्मक विधि का सहारा लिया जा सकता है। यह कहना समीचीन है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के दिमाग में यह सर्वोपरि होना चाहिए कि एक न्यायिक अधिकारी न्यायिक प्रणाली का चेहरा और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को जमीनी हकीकत के स्तर पर पेश करता है और एक न्यायिक अधिकारी के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी व्यक्तिगत रूप से उसे भारी नुकसान पहुंचाएगी (क्योंकि बाद में टिप्पणियों को हटाने से उसकी प्रतिष्ठा को पूरी तरह से पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है) लेकिन यह संस्था की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करता है और इसके उत्साहपूर्वक पोषित दर्शन की पवित्रता को नष्ट कर देता है।

एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश एक अधिकारी द्वारा पारित अपरिवर्तित और भ्रामक आदेश के बारे में कितना भी दृढ़ता से महसूस कर सकता है, लेकिन उसे संयम, शांति, निष्पक्ष तर्क और तैयार संयम बनाए रखने की आवश्यकता होती है। किसी भी अनावश्यक, अनुचित टिप्पणी को दूर रखने के लिए लोको पेरेंटिस की अवधारणा को दिमाग में सबसे महत्वपूर्ण स्थान लेना होगा [पैरा 19] [1170-डी-एच; 1171-ए-डी]

2.2. प्रत्येक न्यायाधीश को उपरोक्त सिद्धांतों के बारे में खुद को याद दिलाना होगा और उनका धार्मिक रूप से पालन करना होगा। 'शास्त्र' पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति और इसे जानने और व्यवहार में लाने वाले व्यक्ति के बीच अंतर है। जो उनका अभ्यास करता है उसे 'विद्वान' कहा जा सकता है। उक्त सिद्धांत का सहारा लिया जा सकता है, क्योंकि कोई यह जान सकता है या इस बात से अवगत हो सकता है कि निर्णयों में असंयमित भाषा के उपयोग से बचा जाना चाहिए, लेकिन उसी भाषा पर नियंत्रण को भुला दिया जाता है और अर्जित ज्ञान

अभ्यास के क्षेत्र में लागू नहीं होता है। या इसे अलग तरीके से कहें तो ज्ञान स्थिर रहता है और व्यवहार में मौखिक रूप से नहीं आता है। इसलिए, अवधारणा को व्यवहार में लाने के लिए एक प्रतिबद्ध व्यापक प्रयास किया जाना चाहिए ताकि यह ठोस और फलदायी हो और वर्तमान प्रकृति के मुकदमों से बचा जा सके। [पैरा 20] [1171-ई-जी]

3. हाथ में मामले में, टिप्पणियाँ, टिप्पणी और अंतिम निर्देश पूरी तरह से अनुचित और अनावश्यक थे। अपीलार्थी-मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने महसूस किया था कि विलंब और अन्य सहायक कारकों के कारण संहिता की धारा 156 (3) के तहत शक्ति का प्रयोग करने का कोई औचित्य नहीं था। उच्च न्यायालय की, जैसा कि स्पष्ट है, पूरे परिदृश्य के बारे में एक अलग धारणा थी। तथ्य और कानून के अनुप्रयोग की धारणाएँ गलत हो सकती हैं, लेकिन इस तरह की टिप्पणियों और निर्देशों की कभी भी आवश्यकता नहीं होती है। उपरोक्त के संबंध में, अपीलार्थी के खिलाफ टिप्पणियाँ और निर्देश [जैसा कि इस निर्णय के पैराग्राफ तीन में पुनः प्रस्तुत किया गया है] को हटा दिया गया है। यदि उक्त टिप्पणियाँ न्यायिक की वार्षिक गोपनीय सूची में दर्ज की गई हैं। उसी अधिकारी को हटा दिया जाएगा। आदेश की एक प्रति इस न्यायालय के रजिस्ट्रार द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को संबंधित न्यायिक की व्यक्तिगत फाइल पर रखी जाए। [पैरा 21] [1171-एच; 1172-ए-डी]

मामला कानून संदर्भ:

2007 एआईजे (1) 221 पैरा 7 बी

1963 एससीआर 722 पैरा 9

1968 एससीआर 813 पैरा 10,17

1988 (1) अनुपूरक। एस. सी. आर. 396 पैरा 11 सी

1993 (3) अनुपूरक एससीआर 497 पैरा 12

एआईआर 1991 एससी 3240 पैरा 13

1997 एससीआर 420 पैरा 14

1990 (2) एससीआर 110 पैरा 15

एआईआर 2001 एससी 1972 पैरा 16

1964 एस. सी. आर. 363 पैरा 16,17

2005 (2) पूरक एससीआर 686 पैरा 17 ई

1987(1) एससीआर 1 पैरा 17

(1999) 9 एससीसी 211 पैरा 18

आपराधिक अपील न्यायनिर्णय: आपराधिक अपील सं। 2009 का 651.

इलाहाबाद में उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 31.05.2007 से आपराधिक संशोधन सं. 2007 का 1541.

एस.एस. दहिया, एम.एस. बखशी, देबाशीष मिश्रा अपीलार्थी की ओर से.

आर.के. दास, अभिषेक कुमार, डॉ. मोनिका गुएन उत्तरदाताओं के लिए ।

न्यायालय का निर्णय इसके द्वारा दिया गया था

1. दीपक मिश्रा, जे. - वर्तमान अपील एक तस्वीर को दर्शाती है और एक कैनवास को उजागर करती है कि कैसे, इस न्यायालय की कई घोषणाओं के बावजूद, अधीनस्थ न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की रक्षात्मकता से निपटने के दौरान, जब यह अपील या संशोधन में उच्च न्यायालय के समक्ष हमले के अधीन है, तो समशीतोष्ण और शांत भाषा के उपयोग की अनिवार्य आवश्यकता इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक न्यायिक अधिकारी असुरक्षित है और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस तरह की अनुचित टिप्पणियां, न्यायपालिका के लिए सम्मान बढ़ाने के बजाय, पदानुक्रमित प्रणाली में एक असंगति पैदा करती हैं और न्यायपालिका को नीचे लाती हैं, पूरी तरह से बहिष्कृत कर दिया गया है। इसके अलावा, यह प्रवृत्ति एक लाइलाज कैंसर कोशिका की तरह बनी हुई प्रतीत होती है जो थोड़े से असंतुलन पर विस्फोट करती है।
2. अपीलार्थी, एक न्यायिक अधिकारी, इलाहाबाद के उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सुनील सोलंकी बनाम U.P. राज्य में की गई टिप्पणियों और टिप्पणियों से व्यथित है। [आपराधिक संशोधन सं. 2007 का 1541, दिनांक 31-5-2007 (सभी)] के आदेश ने वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी है। तथ्यों का संक्षिप्त विवरण यह है कि सुनील सोलंकी नामक व्यक्ति ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 156 (3) (संक्षेप में "संहिता") के अधीन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर के समक्ष इस आरोप के साथ आवेदन किया था कि 11-2-2007 को 9.30 p.m. पर जब वह कुछ अन्य

लोगों के साथ अपने घर के दरवाजे के बाहर खड़ा था, तो उसके घर के सामने के दरवाजे के सामने से एक विवाह जुलूस निकला और उस समय, एक मौज़िज़म अली ने उसे घेर लिया और अंततः अपनी देसी पिस्तौल से उस पर गोली चला दी, जिससे उसके एक दोस्त शफीक के पेट में चोटें आईं। हालाँकि, जैसा कि सौभाग्य से होगा, उक्त शफीक बाल-बाल बच गया। उक्त घटना के कारण, सुनील सोलंकी ने संबंधित पुलिस थाने में प्राथमिकी दर्ज कराने का बहुत प्रयास किया, लेकिन पूरा प्रयास व्यर्थ हो गया, जिसके परिणामस्वरूप वह पुलिस को प्राथमिकी दर्ज करने और मामले की जांच करने का निर्देश जारी करने के लिए संहिता की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दायर करके विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का दरवाजा खटखटाने के लिए मजबूर हो गया। आवेदन पर विचार करते समय, यहां अपीलार्थी, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने कुछ कारण बताए और उन्हें खारिज कर दिया।

3. असंतुष्ट होने के कारण, सुनील सोलंकी ने उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी और विद्वत एकल न्यायाधीश ने आवेदन में लगाए गए आरोपों पर ध्यान देते हुए पाया कि यह एक उपयुक्त मामला था जहां विद्वत मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी दर्ज करने और कथित अपराधों की जांच का निर्देश देना चाहिए था। इस तरह के निष्कर्ष को दर्ज करते समय, विद्वान न्यायाधीश ने कुछ टिप्पणियां की हैं जो नीचे पुनः प्रस्तुत की गई हैं:

“मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का यह आचरण निंदनीय और पूरी तरह से दुर्भावनापूर्ण और अवैध है।”

इसके बाद विद्वान न्यायाधीश ने आदेश को पूरी तरह से काल्पनिक माना और टिप्पणी की कि:

"बेहद अवैध"।

ऐसा कहने के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश ने आगे कहा कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने कानून की घोर त्रुटि की है। इसके बाद परिच्छेद इस प्रकार है:

"और घायल और मुखबिर के साथ अक्षम्य अन्याय किया है। उनकी संवेदनशीलता की कमी और पूरी तरह से कठोर रवैये ने जानलेवा हमले के आरोपी को आज तक मुक्त छोड़ दिया है।"

उपर्युक्त टिप्पणियां करने के पश्चात्, विद्वत एकल न्यायाधीश ने आदेश को अपास्त कर दिया और मामले को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को विधि के अनुसार आवेदन पर नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए प्रेषित कर दिया जैसा कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा मासुमन बनाम U.P. राज्य में वर्णित किया गया है। [(2007) 1 ऑल एलजे 221] इसके बाद उन्होंने निम्नलिखित निर्देश दिए:

"इस आदेश की एक प्रति बुलंदशहर के प्रशासनिक न्यायाधीश को भेजी जाए ताकि संबंधित सीजेएम के खिलाफ उचित कार्रवाई की जा सके।"

4. विशेष अनुमति याचिका में प्रार्थना उपरोक्त टिप्पणियों, टिप्पणियों और अंतिम निर्देश को हटाने के लिए है।
5. हमने अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील और राज्य के विद्वान वकील श्री रत्नाकर दास को सुना है।

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि उपरोक्त टिप्पणियां और परिणामी निर्देश पूरी तरह से अनुचित थे और निर्विवाद रूप से अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य के आत्मसम्मान और कैरियर को प्रभावित करते हैं और इसलिए निष्कासन के योग्य हैं।
7. राज्य के विद्वान वकील ने उचित रूप से कहा है कि एक न्यायिक अधिकारी को बड़े पैमाने पर जनता की नजर में एक दर्जा प्राप्त है और उसकी प्रतिष्ठा प्रणाली में एक वादी के अंतर्निहित विश्वास को स्थिर करती है और प्रामाणिकता स्थापित करती है और इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा की गई टिप्पणियों को खड़े होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।
8. शुरुआत में ही हम यह स्पष्ट करते हैं कि हम न तो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश की औचित्यपूर्णता से संबंधित हैं और न ही हमें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की कानूनी गर्भधारण पर ध्यान देने की आवश्यकता है जहां तक यह विद्वान मजिस्ट्रेट के आदेश को हटाने से संबंधित है। हम केवल इस मुद्दे पर ध्यान देने के लिए बाध्य हैं: क्या उपरोक्त टिप्पणियां और निर्देश उन सिद्धांतों के अनुरूप किए गए हैं जो इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों द्वारा निर्धारित किए गए हैं और न्यायिक शिष्टाचार और औचित्य के अनुरूप हैं?
9. ईश्वरी प्रसाद मिश्रा बनाम मोहम्मद इसा [ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1728], उच्च न्यायालय ने अपने समक्ष एक अपील में विचारण न्यायालय के निर्णय पर विचार करते हुए, कई स्थानों पर विचारण न्यायालय के विरुद्ध कठोर दंडादेश पारित किए थे और सारतः यह सुझाव दिया था कि विचारण न्यायालय का निर्णय न केवल विकृत

था अपितु बाह्य विचारों पर भी आधारित था। उक्त प्रकार के वर्णन और टिप्पणियों से निपटने के लिए, गर्जेन्द्रगडकर, जे। (जैसा कि तब उनके स्वामी थे) निर्णय का लेखन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय विचारण न्यायाधीश के खिलाफ कठोरता पारित करने में न्यायोचित नहीं था। ईश्वरी प्रसाद मामले (ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1728) में पीठ ने कहा कि: (AIR pp. 1736-37, para 27)

"27. न्यायिक अनुभव से पता चलता है कि अदालतों के समक्ष लाए गए प्रतिद्वंद्वी दावों पर निर्णय लेने में यह तय करना हमेशा आसान नहीं होता है कि सच्चाई कहां है। अपने परस्पर विरोधी विवादों के समर्थन में संबंधित पक्षों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है और परिस्थितियों को भी इसी तरह सेवा में लगाया जाता है। ऐसे मामले में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायाधीश का कर्तव्य है कि वह साक्ष्य पर निष्पक्ष और निष्पक्ष रूप से विचार करे, संभावनाओं के आलोक में इसकी जांच करे और यह तय करे कि सत्य किस तरह से निहित है। साक्ष्य के स्वरूप के बारे में न्यायाधीश द्वारा बनाई गई धारणा अंततः उस निष्कर्ष को निर्धारित करेगी जिस पर वह पहुंचता है। लेकिन इस तथ्य को नजरअंदाज करना असुरक्षित होगा कि सभी न्यायिक दिमाग उक्त साक्ष्य पर समान रूप से प्रतिक्रिया नहीं दे सकते हैं और यह असामान्य नहीं है कि जो साक्ष्य एक न्यायाधीश के लिए सम्मानजनक और भरोसेमंद प्रतीत होता है वह दूसरे न्यायाधीश के लिए सम्मानजनक और भरोसेमंद नहीं प्रतीत हो सकता है। यह बताता है कि क्यों कुछ मामलों में अपील की अदालतें मौखिक साक्ष्य की सराहना पर निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों को उलट देती हैं। यह

ज्ञान कि किसी मामले में प्रस्तुत साक्ष्य पर एक और दृष्टिकोण संभव है, एक गंभीर कारक के रूप में कार्य करता है और न्यायिक निष्कर्षों को दर्ज करने में समशीतोष्ण भाषा के उपयोग की ओर ले जाता है। ऐसे मामलों में न्यायिक दृष्टिकोण हमेशा इस चेतना पर आधारित होगा कि कोई गलती कर सकता है; यही कारण है कि निष्कर्ष व्यक्त करने में अनावश्यक रूप से कठोर शब्दों का उपयोग या विपरीत दृष्टिकोण के खिलाफ अनुचित रूप से कठोर असंयमित या अतिरंजित आलोचना को अपनाना, जो अक्सर अचूकता की भावना पर आधारित होते हैं, से हमेशा बचा जाना चाहिए।

यह ध्यान देने योग्य है कि ईश्वरी प्रसाद मामले (ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1728) में संयम, न्यायिक संतुलन और संतुलन पर जोर दिया गया था।

10. आलोक कुमार रॉय बनाम एस.एन. सरमा [ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 453], संविधान पीठ इस मुद्दे पर विचार कर रही थी कि क्या उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश जांच आयोग के प्रमुख के रूप में काम करते हुए उस क्षमता में आदेश पारित कर सकता है और क्या वह रिट याचिका पर विचार कर सकता है और एक ऐसे स्थान पर रहते हुए अंतरिम आदेश पारित कर सकता है जो उच्च न्यायालय का स्थान नहीं था। उच्च न्यायालय के विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने मामले पर विचार करते हुए न्यायाधीश पर टिप्पणी की कि उन्होंने "अपवित्र जल्दबाजी और जल्दबाजी" में आदेश पारित किया था। इसके अलावा कुछ अवलोकन किए गए थे। एक सहकर्मी के खिलाफ निर्णय में उक्त टिप्पणियों की सराहना नहीं करते हुए, लॉर्डशिप्स ने राय दी कि अनुचितता के स्पष्ट साक्ष्य के साथ अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों के बारे में भी इस तरह की

टिप्पणियां निर्णय में अनावश्यक हैं। आलोक कुमार राय [ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 453] मामले में संविधान पीठ ने आगे कहा कि: (AIR p. 457, para 8)

"8. इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि न्यायिक शिष्टाचार को हर समय बनाए रखा जाना चाहिए और यहां तक कि जहां आलोचना उचित है, वह अत्यधिक संयम की भाषा में होनी चाहिए, हमेशा इस बात को ध्यान में रखते हुए कि टिप्पणी करने वाला व्यक्ति भी गलत है। आलोचना के लिए औचित्य होने पर भी भाषा को गरिमापूर्ण और संयमित होना चाहिए।"

11. ईश्वर चंद जैन बनाम पी एंड एच का उच्च न्यायालय [(1988) 3 एससीसी 370:1988 एससीसी (एल एंड एस) 797: एआईआर 1988 एससी 1395] में यह देखा गया है कि संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायिक अधिकारियों का मार्गदर्शन और सुरक्षा करने के लिए एक संवैधानिक दायित्व के तहत है।

12. के.पी. तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य . [1994 संपं. (1) एस. सी. सी. 540:1994 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 712: ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1031] में उच्च न्यायालय ने निचली अदालत द्वारा पारित आदेश को उलटते हुए आक्षेपित आदेश पारित करने में निचली अदालत की रुचि और उद्देश्य के बारे में कुछ टिप्पणियां की थीं। उस संदर्भ में इस न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय का एक कार्य या तो निचली अदालत द्वारा पारित गलत आदेशों को संशोधित करना या खारिज करना है। यह आगे देखा गया है कि: (SCC p. 542, para 4)

"4. एक न्यायाधीश अपनी क्षमता के अनुसार अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने का प्रयास करता है। ऐसा करते समय, कभी-कभी, उसके गलती करने की संभावना होती है। यह अच्छी तरह से कहा जाता है कि एक न्यायाधीश जिसने कोई गलती नहीं की है, अभी तक पैदा नहीं हुआ है। और यह निम्नतम से लेकर उच्चतम तक सभी स्तरों पर न्यायाधीशों पर लागू होता है। कभी-कभी, उच्च और निचले न्यायालयों के विचारों में अंतर विशुद्ध रूप से दृष्टिकोण और धारणा में अंतर का परिणाम होता है। ऐसे अवसरों पर, निचली अदालतें जरूरी नहीं कि गलत हों और उच्च अदालतें हमेशा सही हों। यह भी याद रखना चाहिए कि निचले न्यायिक अधिकारी ज्यादातर एक आवेशपूर्ण वातावरण में काम करते हैं और लगातार एक मनोवैज्ञानिक दबाव में रहते हैं, जिसमें सभी प्रतियोगी और उनके वकील लगभग अपनी गर्दन के नीचे सांस लेते हैं-अधिक सही ढंग से उनके नथुने तक। उन्हें शांत होकर सोचने और धैर्यपूर्वक निर्णय लेने के लिए उच्च न्यायालयों के अलग-थलग वातावरण का लाभ नहीं है। इसलिए, प्रत्येक त्रुटि, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न लगे, अनुचित उद्देश्य के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए। यह संभव है कि कोई विशेष न्यायिक अधिकारी लगातार न्यायिक आचरण का संदेह पैदा करने वाले आदेश पारित कर रहा हो जो पूरी तरह से या आंशिक रूप से निर्दोष कामकाज के लिए जिम्मेदार नहीं है। ऐसे मामलों में भी, उच्च न्यायालय के लिए अपनाए जाने वाला उचित तरीका यह है कि

वह अपने काम के गोपनीय रिकॉर्ड में उसके आचरण को नोट करे और उचित अवसरों पर इसका उपयोग करे। उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों का यह भी कर्तव्य है कि वे सभी संबंधितों से न्यायिक अनुशासन और न्यायपालिका के लिए सम्मान सुनिश्चित करें। न्यायपालिका के प्रति सम्मान तब नहीं बढ़ता जब निचले स्तर के न्यायाधीशों की असंयमित आलोचना की जाती है और सार्वजनिक रूप से उनकी निंदा की जाती है। न्याय प्रशासन और न्यायपालिका में लोगों के विश्वास को इससे बड़ा कोई नुकसान नहीं हो सकता है जब उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश सार्वजनिक रूप से किसी न किसी कारण से अधीनस्थ न्यायाधीशों में विश्वास की कमी व्यक्त करते हैं। यह याद रखना चाहिए कि जिन अधिकारियों के खिलाफ इस तरह की सख्ती सार्वजनिक रूप से पारित की जाती है, वे अपने अधीनस्थों और जनता के सदस्यों की नजर में हमेशा के लिए निंदनीय होते हैं। न्यायपालिका को भीतर से नष्ट करने के लिए इससे बेहतर कोई साधन नहीं मिल सकता है। इसलिए न्यायाधीशों को आत्मसंयम रखना चाहिए। अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों की अस्वीकृति व्यक्त करने के तरीके और तरीके हैं लेकिन उनके उद्देश्यों को जिम्मेदार ठहराना निश्चित रूप से उनमें से एक नहीं है। न्यायपालिका को नीचे ले जाने का यह निश्चित तरीका है।

13. काशीनाथ राय बनाम बिहार राज्य [(1996) 4 एस. सी. सी. 539:1996 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 789: ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 3240] में यह निर्णय दिया गया है कि हमारी

पदानुक्रमित न्यायिक प्रणाली में अपीलीय और पुनरीक्षण न्यायालयों की स्थापना इस पूर्वधारणा के साथ की गई है कि कुछ मामलों में निचली अदालतें निर्णय लेने में गलत हो सकती हैं, दोनों तथ्यों और कानून पर। त्रुटियों को सुधारने के लिए उच्च न्यायालयों की स्थापना की गई है, लेकिन उक्त सुधार न्यायालय की गरिमा और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखते हुए उचित तरीके से किया जाना चाहिए। यह उच्च न्यायालयों का दायित्व है कि वे निर्णय में संदेश को तर्क की प्रक्रिया के माध्यम से संबंधित अधिकारियों तक पहुंचाएं, अनिवार्य रूप से, प्रेरक, उचित, मधुर लेकिन स्पष्ट और परिणाम उन्मुख लेकिन शायद ही कभी एक फटकार।

14. ब्रज किशोर ठाकुर बनाम भारत संघ [(1997) 4 एस. सी. सी. 65:1997 एस. सी. सी. (सी. आर.) 514: (1997) 2 एस. सी. आर. 420] में इस न्यायालय ने अधीनस्थ अधिकारियों के विरुद्ध आदेशों के लिए कठोरता पारित करने की प्रथा को अस्वीकार कर दिया। उस संदर्भ में दो-न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार टिप्पणी की: (SCC p. 70, para 11)

"11. जब उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश सार्वजनिक रूप से अधीनस्थ न्यायाधीशों में विश्वास की कमी व्यक्त करते हैं तो न्याय के प्रशासन और न्यायिक संस्थानों में लोगों के विश्वास को कोई बड़ा नुकसान नहीं हो सकता है। यह बार-बार कहा गया है कि असंयमित भाषा का उपयोग करने और निचली न्यायपालिका के खिलाफ आक्षेप लगाने से न्यायपालिका के प्रति सम्मान नहीं बढ़ाया जाता है।"

15. ए.एम. माथुर बनाम प्रमोद कुमार गुप्ता [(1990) 2 एस. सी. सी. 533: ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 1737] हालांकि एक अलग

संदर्भ में न्यायिक संयम और अनुशासन पर अत्यधिक जोर दिया गया था, उक्त निर्णय से एक अंश को पुनः प्रस्तुत करना उचित है: (SCC pp. 538-39, para 13)

"13. न्याय के सुव्यवस्थित प्रशासन के लिए न्यायिक संयम और अनुशासन उतना ही आवश्यक है जितना कि सेना की प्रभावशीलता के लिए। संयम का कर्तव्य, कार्य की यह विनम्रता हमारे न्यायाधीशों का एक निरंतर विषय होना चाहिए। निर्णय लेने में यह गुण न्यायाधीशों के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए। इस संबंध में न्यायिक संयम को बेहतर न्यायिक सम्मान कहा जा सकता है, यानी न्यायपालिका द्वारा सम्मान। अदालत के साथ-साथ राज्य, कार्यपालिका और विधायिका की अन्य समन्वित शाखाओं के समक्ष आने वालों का सम्मान करें। आपसी सम्मान होना चाहिए। जब ये गुण विफल हो जाते हैं या जब वादियों और जनता को विश्वास हो जाता है कि न्यायाधीश इन गुणों में विफल रहा है, तो यह न तो न्यायाधीश के लिए अच्छा होगा और न ही न्यायिक प्रक्रिया के लिए।

16. (2001) 3 एस. सी. सी. 54: ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 972 में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ संहिता की धारा 482 के अधीन आपराधिक विविध याचिका का निपटारा करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय में निहित प्रतिकूल टिप्पणियों के बारे में विचार कर रही थी और महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा मांगी गई निष्कासन ऐसी टिप्पणी से व्यथित थी। इस बात पर चर्चा करने के बाद कि

व्यथित न्यायिक अधिकारी टिप्पणियों को हटाने के लिए इस न्यायालय से संपर्क कर सकते हैं, पीठ ने राय दी कि किन परिस्थितियों में टिप्पणी करने की शक्ति का प्रयोग जांच का सामना कर सकता है. एक न्यायिक अधिकारी, पुनः मामले में [(2001) 3 SCC 54: AIR 2001 SC 972], पीठ ने व्यक्त किए गए विचार को दोहराया। वी. मोहम्मद। नईम [एआईआर 1964 एससी 703: (1964) 1 सीआरआई एलजे 549] जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि: ('के', एक न्यायिक अधिकारी, पुनः [(2001) 3 एस. सी. सी. 54: ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 972], एस. सी. सी. पृष्ठ 64, पैरा 12 में)

"12. ... समग्र परीक्षा यह है कि आलोचना या अवलोकन न्यायिक प्रकृति का होना चाहिए और औपचारिक रूप से संयम, संयम और संयम से अलग नहीं होना चाहिए।

इसके बाद उनके प्रभुत्व ने न्यायिक संयम की अवधारणा, नियंत्रण शक्ति, उच्च न्यायालय से अधीनस्थ न्यायपालिका की अपेक्षाओं, उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली वैधानिक अधिकारिता का उल्लेख किया और अंततः यह राय दी कि उच्च न्यायालयों को यह याद रखना होगा कि न्यायिक घोषणाओं में शामिल एक अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी को छूने वाली आलोचनाओं और टिप्पणियों की अपनी शरारतपूर्ण कमजोरियां हैं।

इसके बाद न्यायालय दुर्बलताओं की गणना करने के लिए आगे बढ़ा। वे इस प्रकार पढ़ते हैं: ('के', एक न्यायिक अधिकारी, पुनः (2001) 3 एस. सी. सी. 54: ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 972], एस. सी. सी. पी. 65, पैरा 15)

"15. सबसे पहले, न्यायिक अधिकारी की निंदा की जाती है जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन

है। स्वयं न्याय प्रदान करने वाले अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य को इस न्यूनतम प्राकृतिक न्याय से वंचित नहीं किया जाना चाहिए ताकि अनसुने निंदा से बचाया जा सके। दूसरा, इस तरह की आलोचना या अवलोकन से होने वाले नुकसान को पूर्ववत करने में असमर्थ हो सकता है। किसी निर्णय में निहित न्यायिक अधिकारी की ऐसी आलोचना, रिपोर्ट करने योग्य या नहीं, खुले में एक घोषणा है और इसलिए सार्वजनिक हो जाती है। वही न्यायाधीश, जिसने स्वयं को न्यायिक पक्ष में बैठे हुए, किसी अधीनस्थ न्यायाधीश के विरुद्ध एकल मामले के तथ्यों द्वारा निर्देशित टिप्पणियां करने के लिए राजी पाया, प्रशासनिक पक्ष में बैठकर और अधीनस्थ न्यायाधीश के समग्र सराहनीय प्रदर्शन से अवगत होकर, न्यायिक पक्ष पर उन टिप्पणियों को करने के लिए अपरिवर्तनीय रूप से पश्चाताप कर सकता है, जिसका हानिकारक प्रभाव वह स्वयं भी प्रशासनिक पक्ष से नहीं हटा सकता है। तीसरा, मानव स्वभाव क्या है, एक उच्च न्यायालय के फैसले में निहित एक न्यायिक अधिकारी की ऐसी आलोचना मुकदमेबाज पक्ष को न केवल अपने प्रतिद्वंद्वी पर बल्कि उस न्यायाधीश पर भी जीत की भावना देती है जिसने उसके खिलाफ मामले का फैसला किया था। यह निर्णायक न्यायाधीश के न्यायिक अधिकार के प्रतिकूल है। चौथा, एक न्यायिक अधिकारी द्वारा अपनी खुद की अपील या याचिका दायर करके टिप्पणियों को हटाने की मांग करने से उसे उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के

समक्ष एक पक्षकार के रूप में प्रस्तुत वादी का दर्जा मिल जाता है-एक ऐसी स्थिति जो न्यायिक प्रणाली के कामकाज के दृष्टिकोण से बहुत खुश नहीं है।

इसके बाद पीठ ने यह निर्धारित किया कि मामले को कैसे संभाला जाना चाहिए और प्रशासनिक पक्ष से कैसे निपटा जाना चाहिए और अंततः टिप्पणियों को हटा दिया।

17. साम्या सेठ बनाम शंभू सरकार [(2005) 6 एस. सी. सी. 767:2005 एस. सी. सी. (सी. आर.) 1483: ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3309] में न्यायालय उस मामले पर विचार कर रहा था जहां एक न्यायिक अधिकारी को कलकत्ता उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा उसके विरुद्ध की गई टिप्पणियों को हटाने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए विवश किया गया था। उनके प्रभुता ने मोहम्मद में निर्णयों का उल्लेख किया। नईम [AIR 1964 SC 703: (1964) 1 Cri LJ 549], आलोक कुमार रॉय [AIR 1968 SC 453], M.P. v. नंदलाल जयस्वाल [(1986) 4 एससीसी 566: (1987) 1 एससीआर 1] और कुछ अन्य अधिकारियों ने राय दी कि सख्ती पूरी तरह से अनुचित थी। उस संदर्भ में साम्या सेठ मामले [(2005) 6 एस. सी. सी. 767:2005 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 1483: ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3309] में न्यायालय ने अन्य देशों में व्यक्त किए गए दृष्टिकोण के बारे में कुछ अंशों का उल्लेख किया। हम उन्हें पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैं: (साम्या निर्धारण मामला [(2005) 6 एस. सी. सी. 767:2005 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 1483: ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3309], एस. सी. सी. पी. 775, पैरा 18-19)

"18. यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है और हम इस तथ्य से अवगत हैं कि न्यायाधीश भी इंसान हैं। उनकी अपनी पसंद और नापसंद हैं; उनकी

प्राथमिकताएं और पूर्वाग्रह। एक न्यायाधीश के खिलाफ पूर्वाग्रह के आरोप से निपटने के लिए, *J.P. Linahan Inc.*, में [138 F 2d 650 (2nd Cir 1943)], फ्रैंक, जे ने कहा:

'तथापि, यदि' पक्षपात 'और' पक्षपात 'को न्यायाधीश के मन में पूर्वधारणाओं की पूर्ण अनुपस्थिति के अर्थ में परिभाषित किया जाता है, तो किसी पर कभी भी निष्पक्ष सुनवाई नहीं हुई है, और कोई भी कभी नहीं करेगा। मानव मन, बचपन में भी, कागज का कोई खाली टुकड़ा नहीं है। हम पूर्वधारणाओं और शिक्षा की प्रक्रियाओं के साथ पैदा हुए हैं, औपचारिक और अनौपचारिक, ऐसे दृष्टिकोण पैदा करते हैं जो विशेष उदाहरणों में तर्क से पहले होते हैं और इसलिए, परिभाषा के अनुसार पूर्वाग्रह हैं।

19. न्याय जॉन क्लार्क ने एक बार कहा है:

उन्होंने कहा, 'मैं कभी भी किसी ऐसे न्यायाधीश को नहीं जानता, चाहे वह कितना भी कठोर क्यों न हो, जिन्होंने अपने न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन शुद्ध, बिना किसी कारण के वातावरण में किया हो। हाय! हम सभी "धरती माता का सामान्य विकास" हैं-यहां तक कि हममें से जो लंबे वस्त्र पहनते हैं "।

18. बिहार राज्य बनाम नीलमणि साहू [(1999) 9 एस. सी. सी. 211] में पटना उच्च न्यायालय के एक वर्तमान न्यायाधीश ने भूमि अधिग्रहण कार्यवाही से उत्पन्न विशेष अनुमति याचिका के निपटारे

में इस न्यायालय द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों को हटाने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। इस न्यायालय की एक पीठ ने इस अभिव्यक्ति का उपयोग किया था, "हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश, न्यायमूर्ति P.K द्वारा लिया गया दृष्टिकोण। देव, उचित सम्मान के साथ, अगर हम ऐसा कह सकते हैं, तो सबसे अत्याचारी हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश ने इसे कलंकित माना था और इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था और यह तर्क दिया था कि निर्णय के लिए यह आवश्यक नहीं था। इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने पक्षकारों के विद्वान वकील को सुनने के बाद और इस न्यायालय के निर्णय पर विचार करने के बाद यह राय व्यक्त की कि निर्णय में प्रयुक्त अभिव्यक्ति पूरी तरह से अनुचित थी क्योंकि जब यह न्यायालय उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अभिव्यक्ति का उपयोग करता है तो यह संबंधित व्यक्ति की गरिमा के अनुरूप होना चाहिए। अंततः उक्त टिप्पणियों को हटा दिया गया।

19. विधि के उपर्युक्त प्रतिपादन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि चार दशकों से अधिक समय से यह न्यायालय किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पवित्र कर्तव्य पर जोर देता रहा है कि किसी निर्णय में भाषा का उपयोग कैसे किया जाए ताकि संबंधित अधिकारी को एक संदेश दिया जा सके। यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि निर्णय को अस्थिर करते समय तर्क की एक प्रक्रिया होनी चाहिए और इस तरह के तर्क को स्पष्टता और परिणाम अभिविन्यास के साथ उचित रूप से कहा जाना चाहिए। एक संदेश और एक फटकार के बीच एक अंतर स्पष्ट रूप से कहा गया है। एक न्यायाधीश को शिष्टाचार और पवित्रता बनाए रखने की आवश्यकता होती है जो न्यायिक अनुशासन और संयम में निहित है। किसी भी स्तर पर काम करने वाले न्यायाधीश की जनता की नजर में गरिमा होती है और पूरी प्रणाली

की विश्वसनीयता गरिमापूर्ण भाषा के उपयोग और निरंतर संयम, संयम और संयम पर निर्भर करती है। यह नहीं भूलना चाहिए कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता का इसकी विश्वसनीयता के साथ एक अविभाज्य और अविभाज्य संबंध है। न्यायिक अधिकारी पर अनुचित टिप्पणियां उक्त विश्वसनीयता में सेंध लगाती हैं और परिणामस्वरूप किसी प्रकार का क्षरण होता है और कानून के शासन की अवधारणा को प्रभावित करता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया की पवित्रता को एक मंच पर बैठने और शिष्टाचार की अवहेलना करने वाले उपदेश देने के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उच्च न्यायालयों की ओर से सुधारात्मक उपायों का सहारा लेना अनिवार्य है। प्रशासनिक पक्ष में एक सुधारात्मक विधि का सहारा लिया जा सकता है। यह कहना समीचीन है कि किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के दिमाग में यह सर्वोपरि होना चाहिए कि एक न्यायिक अधिकारी न्यायिक प्रणाली का चेहरा और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को जमीनी वास्तविकता के स्तर पर पेश करे और एक न्यायिक अधिकारी के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी व्यक्तिगत रूप से उसे भारी नुकसान पहुंचाएगी (क्योंकि बाद में टिप्पणियों का निष्कासन उसकी प्रतिष्ठा को पूरी तरह से पुनर्जीवित नहीं कर सकता है) बल्कि संस्था की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करता है और इसके उत्साहपूर्वक पोषित दर्शन की पवित्रता को नष्ट कर देता है। एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश एक अधिकारी द्वारा पारित अपरिवर्तित और भ्रामक आदेश के बारे में कितना भी दृढ़ता से महसूस कर सकता है, लेकिन उसे संयम, शांति, निष्पक्ष तर्क और तैयार संयम बनाए रखने की आवश्यकता होती है। किसी भी अनावश्यक या अनुचित टिप्पणी को दूर रखने के लिए लोको पेरेंटिस की अवधारणा को दिमाग में सबसे महत्वपूर्ण स्थान लेना होगा।

20. प्रत्येक न्यायाधीश को उपरोक्त सिद्धांतों के बारे में खुद को याद दिलाना होगा और उनका धार्मिक रूप से पालन करना होगा। इस संबंध में टाइम मशीन में बैठना और एक प्रसिद्ध लेखक की दूरदर्शी कहावत पर ध्यान देना अनुचित नहीं होगा, जिसने कहा है कि "शास्त्रों" पर नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति और दूसरे के बीच अंतर है जो इसे जानता है और इसे व्यवहार में लाता है। जो उनका अभ्यास करता है, उसे ही "विद्वान" कहा जा सकता है। हालांकि इसे एक अलग संदर्भ में बताया गया था, फिर भी उक्त सिद्धांत का सहारा लिया जा सकता है, क्योंकि कोई यह जान सकता है या इस बात से अवगत हो सकता है कि निर्णयों में असंयमित भाषा के उपयोग से बचा जाना चाहिए, लेकिन इसे लिखते समय भाषा पर नियंत्रण को भुला दिया जाता है और अर्जित ज्ञान अभ्यास के क्षेत्र में लागू नहीं होता है। या इसे अलग तरह से कहने के लिए, ज्ञान स्थिर रहता है और व्यवहार में मौखिक रूप से नहीं आता है। इसलिए, अवधारणा को व्यवहार में लाने के लिए एक प्रतिबद्ध व्यापक प्रयास किया जाना चाहिए ताकि यह ठोस और फलदायी हो और वर्तमान प्रकृति के मुकदमों से बचा जा सके।

21. मामले की बात करें तो, हमारी सुविचारित राय में, टिप्पणियां, टिप्पणी और अंतिम निर्देश पूरी तरह से अनुचित और अनावश्यक थे। विद्वत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने महसूस किया था कि विलंब और अन्य सहायक कारकों के कारण संहिता की धारा 156 (3) के तहत शक्ति का प्रयोग करने का कोई औचित्य नहीं था। विद्वान एकल न्यायाधीश, जैसा कि स्पष्ट है, की पूरे परिदृश्य के बारे में एक अलग धारणा थी। तथ्य और कानून के अनुप्रयोग की धारणाएँ गलत हो सकती हैं, लेकिन इस तरह की टिप्पणियों और निर्देशों की कभी भी आवश्यकता नहीं होती है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए हम अपने निर्णय के पैरा 4 में पुनः प्रस्तुत की गई टिप्पणियों और

निर्देशों को बिना किसी हिचकिचाहट के हटा देते हैं। यदि उक्त टिप्पणियों को न्यायिक अधिकारी की वार्षिक गोपनीय सूची में दर्ज किया गया है तो उन्हें हटा दिया जाएगा। इसके अलावा आदेश की एक प्रति इस न्यायालय के रजिस्ट्रार द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को संबंधित न्यायिक अधिकारी की व्यक्तिगत फाइल पर रखी जाए।

22. तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है।

**Translated By:
Pratik Kumar**